THE TIMES OF INDIA

Date:31-08-19

Privatise To Prosper

Best way to rescue economy from ongoing slump

TOI Editorials

India's gross domestic product grew 5% between April-June, the lowest quarterly growth rate recorded in six years. The April-June growth rate fell well below economist forecasts. Also, the growth rate has now dipped for five successive quarters. What caused this slowdown? A broad-based cyclical downturn, concluded the Reserve Bank of India. Its prescription for a cyclical downturn is a countercyclical approach. In addition, it has recommended structural reforms which encompass factors of production like land, labour and capital.

Yesterday, finance minister Nirmala Sitharaman announced ten public sector banks will be merged to shrink their number to four. This will be accompanied by governance reforms in banks to enhance their performance. If this does come through, it will address weakness in one factor of production to some extent. Structural reforms require deep commitment and the pay-off takes a while to show up. They remain indispensable. But the current slowdown also has a cyclical component. It has been addressed by RBI through an interest reduction cycle, backed by easing of liquidity constraints. A countercyclical package works best if fiscal and monetary policy are in sync. The government however is in a bind as it's stretched and can't expand its borrowing programme.

The way out in this situation is an aggressive privatisation exercise. This way, government can monetise its existing assets and raise resources without punitive taxation or higher levels of borrowing. Privatisation will be in harmony with government's belief that it has no business being in business. The obvious target for immediate privatisation is Air India. NDA has declared it wants to privatise the ailing carrier. Therefore, it should not waste time getting started. Other than privatisation, as the largest owner of land in India, government has another painless option to raise resources. It's time to get cracking.

दैनिक भास्कर

Date:31-08-19

देश को प्लास्टिक मुक्त कराना हमारी भी जिम्मेदारी

संपादकीय

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने स्वतंत्रता दिवस पर लाल किले से दिए भाषण में देश को सिंगल यूज प्लास्टिक से मुक्त बनाने का आहवान किया था, 25 अगस्त को पीएम के "मन की बात' कार्यक्रम में भी अहम मुद्दा था प्लास्टिक बैन। 2 अक्टूबर को गांधी जयंती के दिन से यह अभियान शुरू होगा। इस दिन से कई तरह के प्लास्टिक पर प्रतिबंध लगाए जाने के संकेत दिए जा चुके हैं। 2022 तक देश में प्लास्टिक के इस्तेमाल को कम करने का लक्ष्य है। ऐसे में "प्लास्टिक मुक्त भारत" के स्लोगन सुनाई देने लगे हैं। केंद्रीय गृहमंत्री अमित शाह ने गुरुवार को महिलाओं से अपील की कि वे खरीदारी के लिए प्लास्टिक की थैलियों का इस्तेमाल करना बंद करें और इसके बजाए लंबे समय तक चलने वाले कपड़े के थैली प्रयोग करें। शाह ने कहा कि केंद्र सरकार पर्यावरण को बचाने की कोशिश के तहत एक बार इस्तेमाल होने वाले प्लास्टिक के उत्पादन को रोकने के लिए कड़े कदम उठाने पर विचार कर रही है। तमाम सरकारी अधिकारियों को प्लास्टिक के खिलाफ सख्त हिदायत दी जा चुकी हैं। लेकिन क्या सरकार के इस फैसले का सख्ती से पालन होगा? प्लास्टिक हमारे लिए खतरनाक है यह बात तो हम काफी समय से जानते हैं, लेकिन क्या हम प्लास्टिक का कोई दूसरा विकल्प ढूंढ़ने में समर्थ हैं? अपने आस-पास अगर आप नजर घुमाकर देखेंगे तो खुद को प्लास्टिक से घिरा हुआ ही पाएंगे। प्लास्टिक की वॉटर बॉटल तो जैसे हमारे जिंदगी का अहम हिस्सा ही बन चुकीं हैं। पूरी दुनिया में हर मिनट पेयजल से भरी 10 लाख प्लास्टिक बोतलें खरीदी जाती हैं। हर साल दुनिया भर में 5 लाख करोड़ सिंगल यूज़ वाले प्लास्टिक बैग्स इस्तेमाल किए जाते हैं। इस प्लास्टिक का कचरा जाता कहां है? या तो हमारी ज़मीन खा रही है या फिर पानी में जाकर जलीय जीवन और प्रकृति की जल आधारित संरचना को तबाह कर रहा है। वैज्ञानिकों ने पाया है कि प्लास्टिक हम सबके शरीर मे किसी न किसी के रूप में पहुंच रहा है। क्या आपको नहीं लगता कि जीवन को आसान बनाने के लिए ईजाद की गई अधिकतर चीजें हमारे लिए हद से ज्यादा हानिकारक साबित हो रही हैं? प्लास्टिक के खिलाफ सिर्फ सरकारी लड़ाई काफी नहीं, इसे हमें अपनी लड़ाई समझकर लड़ना होगा, तब जाकर हम आने वाली पीढ़ी को माइक्रोप्लास्टिक वातावरण से बचा पाएंगे।

दैनिक जागरण

Date:31-08-19

चीन-पाकिस्तान की गहरी होती साठगांठ

ब्रहमा चेलानी, (लेखक सामरिक मामलों के विश्लेषक हैं)

मोदी सरकार द्वारा जम्मू-कश्मीर का पूर्ण राज्य का दर्जा और उसे मिले संवैधानिक विशेषाधिकार समाप्त करना भारत के लिए ऐतिहासिक पड़ाव है। मोदी सरकार ने यह कदम केवल घरेलू कारकों को देखकर ही नहीं, बल्कि अंतरराष्ट्रीय पहलुओं को ध्यान में रखकर भी उठाया। इनमें अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप द्वारा कश्मीर में मध्यस्थता के शिगूफे से लेकर पाकिस्तान की शह वाले अफगान तालिबान से अमेरिका की

सौदेबाजी जैसे पहलू भी शामिल रहे। अनुच्छेद 370 खत्म होने के बाद चीन ने जम्मू-कश्मीर मुद्दे के अंतरराष्ट्रीयकरण की पहल की। इसके लिए उसने संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद की एक विशेष, लेकिन अनौपचारिक बैठक बुलाई। उसने बहुत निर्लज्ज ढंग से इस विवाद में अपनी भूमिका पर पर्दा डाल दिया, जबकि वह जम्मू-कश्मीर के 20 प्रतिशत भूभाग पर अवैध रूप से कब्जा किए बैठा है। उसने इस मसले को केवल भारत-पाकिस्तान के मुद्दे के रूप में पेश किया। यह मानना पूरी तरह गलत होगा कि सुरक्षा परिषद में चीन की इस कवायद से कुछ हासिल नहीं हुआ। इस दावपेंच से पाकिस्तान और उसके पिट्ठुओं का हौसला बढ़ेगा। चीन की शरारत से जम्मू-कश्मीर में अलगाववादियों को भी मदद मिली। भले ही सुरक्षा परिषद की बैठक का कोई ठोस नतीजा न निकला हो, लेकिन इस बैठक ने भारत की जम्मू-कश्मीर नीति को अंतरराष्ट्रीय चर्चा में ला दिया। बंद कमरे में हुई बैठक में इस तथ्य की अनदेखी नहीं की जा सकती कि 1971 में पाकिस्तान के साथ हुए युद्ध के बाद पहली बार सुरक्षा परिषद में कश्मीर पर चर्चा हुई।

चीनी षड्यंत्र भारत को यही स्मरण कराता है कि जम्मू-कश्मीर के मामलों में उसका दखल और बढ़ेगा। चीन की रणनीति ही यह है कि वह भारत की दुखती रग छेड़कर गतिरोध को चरम पर ले जाए। बीजिंग जम्मू-कश्मीर को भारत की बड़ी कमजोरी के रूप में देखता है। इसके उलट जम्मू-कश्मीर में संवैधानिक बदलाव से भारत को जम्मू, कश्मीर एवं लद्दाख में चीन-पाकिस्तान की साठगांठ से निपटने में मदद मिलेगी। जम्मू-कश्मीर और लद्दाख को दो केंद्रशासित प्रदेशों में विभाजित कर भारत ने जम्मू-कश्मीर से जुड़े अपने सीमा विवाद को भी पाकिस्तान एवं चीन के साथ अलग-अलग हिस्सों में बांट दिया।अनुच्छेद 370 के चलते पाकिस्तान का रवैया यही रहा कि भारत जम्मू-कश्मीर को विवादित क्षेत्र मानता है। चूंकि केवल स्थाई नागरिकों को ही राज्य में जमीन खरीदने की इजाजत थी इसलिए कश्मीर घाटी में इस्लामी कट्टरपंथी हावी हो गए। वहां से कश्मीरी पंडितों को जबरन भगा दिया गया। अपनी विविधता भरी नस्लीय एवं धार्मिक पहचान के साथ जम्मू-कश्मीर बहुलतावादी भारत का एक उम्दा प्रतीक था, मगर उसकी समन्वयकारी संस्कृति और परंपराओं पर जिहादी आघात से पूरा परिदृश्य बदल गया।

1989 के बाद नई दिल्ली में सत्तारूढ़ सरकारें इस रुझान को रोकने में असहाय रहीं। परिणामस्वरूप कश्मीर की विविधता भरी परंपराओं पर वहाबी और सलाफी रीति-रिवाज हावी होते गए। अनुच्छेद 370 की समाप्ति से भले ही कश्मीर घाटी में इस्लाम का अरबीकरण न रुके, लेकिन इससे भारतीय संघ में जम्मू-कश्मीर के वास्तविक रूप से एकीकरण की समस्या जरूर सुलझेगी। वास्तव में इस परिवर्तन से जम्मू-कश्मीर में सुरक्षा संबंधी फैसलों पर केंद्र सरकार और मजबूती के साथ निर्णय कर सकेगी। जम्मू-कश्मीर में उठाए गए कदमों के आलोक में भारत ने अंतरराष्ट्रीय मोर्चे पर स्थिति को बहुत अच्छे से संभाला, मगर अब उसे आंतरिक सुरक्षा और क्षेत्रीय चुनौतियों पर ध्यान देना होगा। सरकार द्वारा आवाजाही और संचार के स्तर पर जो प्रतिबंध लगाए गए हैं उससे संविधानप्रदत्त मूल अधिकार प्रभावित हो रहे हैं। सुरक्षा के मोर्चे पर जोखिम को देखते हुए ये प्रतिबंध चरणबद्ध ढंग से हटाए जा सकते हैं। जहां हांगकांग की जनता लोकतंत्र के लिए शांतिपूर्वक प्रदर्शन कर रही है, वहीं कश्मीर के हथियारबंद जिहादियों का लोकतंत्र में कोई विश्वास नहीं और वे खलीफा का शासन स्थापित करना चाहते हैं। ऐसे में प्रशासन को घाटी के अस्थिर जिलों में एक विकेंद्रित और सुनियोजित रणनीति के तहत इस तरह प्रतिबंध लगाने चाहिए जिससे स्थानीय स्तर पर शांति स्थापित हो। इसके लिए पुरस्कृत और साथ ही दंडित करने वाला रवैया अपनाया जाना चाहिए। चीन-पाकिस्तान की गहरी होती साठगांठ भारत की सबसे बड़ी चुनौती है। चीन के संरक्षण में पाकिस्तान भारत के खिलाफ लगातार जिहादी आतंक का इस्तेमाल करता रहेगा। भारत को पाकिस्तान के पिट्ठू आतंकियों पर कार्रवाई के बजाय उनके असली आका यानी फौजी हुक्मरानों पर शिकंजा कसना होगा। 2016 में उड़ी हमले के बाद सर्जिकल स्ट्राइक हो या फरवरी में बालाकोट हमला, ये दोनों कार्रवाइयां आतंकी ठिकानों पर हुईं। इनसे उन फौजी हुक्मरानों का कुछ नहीं बिगड़ा जो भारत को हजार घाव देने की रणनीति को धार देने

में जुटे हैं। पाकिस्तान के पीछे असल ताकत चीन है, जिसके खिलाफ भारत आवाज बुलंद करने में भी हिचकता है। वास्तव में भारत के खिलाफ भारी व्यापार अधिशेष का इस्तेमाल कर चीन अपनी सैन्य क्षमताएं बढ़ा रहा है। वह एक गोली दागे बिना ही अपने आक्रामक हित साध रहा है। भारत एक तरह से खुद अपने नियंत्रण के साधन मुहैया करा रहा है। भारत के दूरसंचार क्षेत्र में चीन का पहले ही वर्चस्व कायम हो चुका है और हुआवे पर भारत में 5जी परीक्षण के लिए प्रतिबंध लगाने के बजाय भारत कोई बीच का रास्ता तलाश रहा है।

अप्रैल 2018 में वुहान की खुमारी हफ्ते भर तक नहीं टिक पाई। फिर भी चीन के हालिया उकसावे के बावजूद वुहान जैसी वार्ता के लिए चीनी राष्ट्रपति अक्टूबर में भारत आएंगे जो शायद वाराणसी में होगी। इससे पहले चीन भारत को सीमा विवाद से जुड़ी वार्ताओं में उलझाने की मंशा दिखा रहा है। आर्थिक मोर्चे पर भारत कम से कम इतना तो कर सकता है कि वह प्रमुख क्षेत्रों में चीन की राह रोके।

अगर भारत लगातार चीन की उकसाने वाली गतिविधियों की अनदेखी करता रहेगा तो अगले महीने जब मोदी चीनी राष्ट्रपति के साथ वार्ता के लिए बैठेंगे तो भारतीय पक्ष कमजोर महसूस करेगा। भारत पर देसी-विदेशी आलोचकों के साथ ही मानवाधिकारवादियों का दबाव बढ़ सकता है। हालांकि दीर्घ अवधि में भारत के साथ व्यापक जुड़ाव और विकास की गतिविधियां कश्मीर घाटी में हालात सामान्य बनाने में योगदान देंगी।

नईदुनिया

Date:31-08-19

बैंकिंग सुदृढ़ता की ओर

बैंको के विलय के साथ यह भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए की सरकारी बैंक उन समस्याओं से ग्रस्त न होने पाएं ,जिनके चलते उनकी स्थिति लगातार कमजोर हुई।

संपादकीय

दस सरकारी बैंकों के विलय का फैसला बैंकिंग सुधार की दिशा में एक बड़ा कदम है। ऐसे किसी फैसले का एक अर्से से इंतजार किया जा रहा था, क्योंकि देश में दो दर्जन से अधिक सरकारी बैंक होने का कोई औचित्य नहीं बनता। वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण की दस बैंकों का विलय चार बैंकों में करने की घोषणा का मतलब है कि अब देश में एक दर्जन सरकारी बैंक ही रह जाएंगे। चूंकि चार-पांच सरकारी बैक ही पर्याप्त माने जा रहे है इसलिए देखना यह है कि भविष्य में बैंकों की संख्या में और कटौती होती है या नहीं? जो भी हो, कम से कम अब यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि सरकारी बैंक उन समस्याओं से न ग्रस्त होने पाएं जिनके चलते एक तरह से उनका दीवाला निकल गया। शेष सरकारी बैंकों को न केवल एक-दूसरे से, बल्कि निजी क्षेत्र के बैंकों से भी प्रतिस्पर्धा करनी चाहिए। इससे भी जरूरी यह है कि उन्हें जनता के पैसे से खुद को उबारे जाने की उम्मीद नहीं रखनी चाहिए। इसी के साथ यह भी आवश्यक है कि वे बेजा राजनीतिक हस्तक्षेप से मुक्त रहें और कर्ज बांटने का काम इस तरह करें कि उसे वसूल भी कर सकें। हालांकि सरकार

यह भरोसा दिला रही है कि सरकारी बैंकों के एनपीए में सुधार आया है, लेकिन इसकी अनदेखी नहीं की जा सकती कि फंसे कर्ज की वसूली अभी भी चिंता का विषय बनती रहती है। इस चिंता से तभी मुक्त हुआ जा सकता है जब सरकारी बैंकों को फंसे कर्ज के मामले में जवाबदेह बनाया जाएगा। इसके लिए जरूरी हो तो नियम-कानूनों में बदलाव किया जाना चाहिए।

बैंकों में विलय की घोषणा एक ऐसे समय हुई जब अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर में भारी गिरावट सामने आई। चालू वित्त वर्ष की पहली तिमाही में विकास दर घटकर पांच प्रतिशत रह जाना यह बताता है कि मंदी का असर गहरा रहा है। यह बीते छह साल में सबसे धीमी विकास दर है। हालांकि अर्थव्यवस्था में सुस्ती के चलते जीडीपी में गिरावट का अंदेशा था, लेकिन पांच प्रतिशत का आंकड़ा कहीं अधिक चिंतित करने वाला है। सरकार उन कारणों से अनभिज्ञ नहीं हो सकती जिनके चलते अर्थव्यवस्था की रफ्तार धीमी पड़ती जा रही है। उसे इन कारणों का निवारण प्राथमिकता के आधार पर करना होगा और इस क्रम में सबसे पहले यह देखना होगा कि लोगों की क्रय शक्ति कैसे बढ़े? उपभोक्ता मांग बढ़ाने के कारगर उपायों के साथ सरकार को आर्थिक सुधारों को भी नए सिरे से गति देनी चाहिए, क्योंकि तभी उन कदमों का सही लाभ मिलेगा जो हाल के दिनों में अर्थव्यवस्था को बल देने के लिए उठाए गए हैं।

Date:31-08-19

भ्रष्टाचार पर चौतरफा प्रहार

डॉ. एके वर्मा

कांग्रेस के नेता और देश के पूर्व वित्त एवं गृह मंत्री पी चिदंबरम की गिरफ्तारी नरेंद्र मोदी सरकार द्वारा भ्रष्टाचार पर तेज होते प्रहार का संकेत है। अपने प्रथम कार्यकाल से ही प्रधानमंत्री मोदी ने भ्रष्टाचार के प्रति जीरो-टालरेंस की नीति अपनाई, लेकिन 72 वर्षों में भ्रष्टाचार ने गहरी जड़ें जमा ली हैं जो देश की अर्थव्यवस्था को दीमक की तरह चाट रही है। भ्रष्टाचार में प्रमुख संस्थाओं के अनेक उच्च पदाधिकारी संलिप्त मिले हैं। उन्हें राजनीतिक संरक्षण भी प्राप्त होता रहा है इसलिए कौन किस पर हाथ डाले? जनता जानती है कि किसी सरकारी दफ्तर में काम कराने के लिए क्या करना पड़ता है? प्राय: तर्क दिया जाता है कि भ्रष्टाचार के लिए जनता भी उतनी ही दोषी है जितने सरकारी अधिकारी और कर्मचारी। सिद्धांतत: यह ठीक है, पर व्यवहार में? कल्पना कीजिए कि 60-70 या ज्यादा वर्ष के पेंशनभोगी सरकारी दफ्तर या कोषागार के चक्कर लगा रहे हैं और संबंधित बाबू उन्हें रोज-रोज नई कमियां बता कर टहला रहा है। क्या वे प्रतिदिन आ सकते हैं? गांव के गरीब किसान, मजदूर, महिलाएं किसी दफ्तर में इस टेबल से उस टेबल परेशान हो रहे हों और उनसे अपेक्षा की जाए कि वे बार-बार आएं? मोदी सरकार ने भ्रष्टाचार के खिलाफ जो मुहिम चलाई है उसके तहत वह राजनीतिक, आर्थिक, प्रशासनिक और सामाजिक भ्रष्टाचार पर एक साथ प्रहार कर रही है, पर आज भ्रष्टाचार का स्वरूप व्यापक और जटिल हो गया है। ऐसी संस्थाएं जिन पर भ्रष्टाचार के निवारण के लिए जनता आश्रित है वे ही भ्रष्टाचार में लिप्त हैं।

आदिकाल से ही भ्रष्टाचार की समस्या रही है। कौटिल्य ने सरकारी अधिकारियों में भ्रष्टाचार के बारे में कहा था कि जिस प्रकार मछली के लिए पानी का सेवन न करना संभव नहीं, उसी प्रकार सरकारी कर्मचारी भी उस पैसे का सेवन किए

बिना नहीं रह सकते जो उनके हाथों से गुजरता है, लेकिन इस प्रवृत्ति पर लगाम तो लगानी ही पड़ेगी और जैसा प्रधानमंत्री मोदी ने कहा, किसी को राजनीतिक नफा-नुकसान की चिंता किए बिना पहल करनी पड़ेगी। साफ-सुथरा प्रशासन शुरू से ही मोदी सरकार की 'यूएसपी' रही है। उन्होंने भ्रष्टाचार पर प्रहार के लिए टॉप-डाउन-मॉडल अपनाया है। उन्होंने सर्वप्रथम स्वयं अपने आचरण से एक भ्रष्टाचार-विहीन राजनीतिज्ञ का प्रतिमान पेश किया। मोदी सरकार की नीतियों से कोई सहमत या असहमत हो सकता है, लेकिन इसकी अनदेखी नहीं कर सकता कि उन पर या उनकी सरकार के मंत्रियों पर भ्रष्टाचार के आरोप नहीं लगे। पूर्व प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह की भी छवि बेदाग रही, लेकिन उनकी सरकार के कई मंत्री भ्रष्टाचार में लिप्त थे।

2019 के लोकसभा चुनावों के दौरान कांग्रेस के जनता ने न तत्कालीन अध्यक्ष राहुल गांधी ने राफेल सौदे में भ्रष्टाचार पर मोदी सरकार को फंसाने की कोशिश की, लेकिन जनता ने उस झूठ को नकार दिया। इसके अलावा प्रधानमंत्री मोदी ने अपने मंत्रियों पर भी नकेल कसी और समय-समय पर उन्हें आगाह किया कि भ्रष्टाचार का कोई भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष मामला बर्दाश्त नहीं किया जाएगा। यही रणनीति उन्होंने शीर्ष-नौकरशाही के प्रति भी अपनाई। एक ओर अफसरों को प्रधानमंत्री से सीधे संपर्क करने का अधिकार दिया तो दूसरी ओर उनकी व्यक्तिगत निगरानी भी की। इसकी 'हवा' तेजी से शीर्ष अधिकारियों में फैल गई और उनमें भय समा गया कि उनका भ्रष्टाचार मोदी से छिपा नहीं रह पाएगा। जो अधिकारी भ्रष्टाचार से फिर भी बाज नहीं आए उन्हें सरकार ने जबरन सेवा मुक्त कर दिया। अभी सेंट्रल बोर्ड ऑफ डायरेक्ट टैक्सेज के अधीक्षक स्तर के 22 अधिकारी और जून 2019 में भारतीय राजस्व सेवा के 27 अधिकारी सेंट्रल सिविल सर्विस रूल्स, 1972 के अंतर्गत भ्रष्टाचार के कारण हटाए गए। विगत पांच वर्षों में लगभग ऐसे 300 से अधिक अधिकारी हटाए जा चुके हैं। मोदी सरकार का फरमान है-रिफॉर्म, परफॉर्म एंड ट्रांसफॉर्म अर्थात 'सुधरो, काम करो और बदलो' अन्यथा बाहर का रास्ता देखो, लेकिन जनता के पैसे से खिलवाड़ मत करो। किसी सरकार में ऐसी मजबूती संभवत: पहली बार दिखाई दे रही है। यह कोई अचानक उठाया गया कदम नहीं है। मोदी सरकार ने शुरूसे ही इसके संकेत दिए थे। काला-धन घोषित करने की योजना, विमुद्रीकरण, टैक्स चोरी रोकने के लिए जीएसटी लाना, बिचौलियों को खत्म करने के लिए सब्सिडी को सीधे खाते में ट्रांसफर करने आदि जैसे अनेक कदम मोदी सरकार की इस मुद्दे पर गंभीरता को रेखांकित करते हैं। इसके कारण ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल द्वारा तैयार 'भ्रष्टाचार-सूचकांक' 2018 में भारत की स्थिति चीन से बेहतर हो गई। 180 देशों की सूची में चीन 87वें स्थान पर चला गया वहीं भारत 78वें स्थान पर पहुंच गया, लेकिन अभी सुधार की बहुत गुंजाइश है। शायद इसीलिए चिदंबरम के विरुद्ध भी कदम उठाने से सरकार हिचकी नहीं। यह कांग्रेस के शीर्ष नेताओं द्वारा भ्रष्टाचार में लिप्त होने का अनोखा केस है। यह बात और है कि जब भी कोई छोटा-बड़ा नेता कानून के शिकंजे में फंसता है तो वह उसका ठीकरा राजनीतिक विद्वेष पर फोड़ देता है। सोनिया और राहुल गांधी भी भ्रष्टाचार के शिकंजे में हैं। यह है मोदी का टॉप-डाउन-मॉडल। जब टॉप अर्थात शीर्ष राजनीतिज्ञों और अधिकारियों पर लगाम लगेगी तो 'बॉटम' अर्थात नीचे वाले अपने आप ठीक हो जाएंगे, लेकिन ऐसी रणनीति तो केंद्र सरकार के मंत्रियों और अधिकारियों के लिए है और जनता का ज्यादा काम राज्य सरकार के दफ्तरों में अधिकारियों से पड़ता है।

राज्यों में प्रधानमंत्री की नहीं वरन मुख्यमंत्रियों की चलती है। संभवत: मोदी की रणनीति में राज्यों के मुख्यमंत्रियों के लिए भी संदेश छिपा है, पर क्या राज्यों के मुख्यमंत्री भी मोदी जैसे साफ-सुथरे हो सकेंगे? क्या वे भी अपने विधायकों और अधिकारियों पर लगाम लगा सकेंगे? अब तो पंचायत स्तर पर भी भ्रष्टाचार है। पंचायतों को करोड़ों रुपये विकास के लिए केंद्र और राज्य से मिलते हैं जिसे ग्राम, ब्लॉक और जिला स्तर पर सरपंच, ब्लॉक-प्रमुख और जिला-पंचायत अध्यक्ष सरकारी अधिकारियों की मिलीभगत से उड़ा रहे हैं। भ्रष्टाचार का फैलाव बहुत है। उसमें गहराई भी बहुत है।

इसके विरुद्ध अन्ना हजारे जैसे जन आंदोलन मात्र से काम नहीं चलेगा, प्राइमरी-कक्षा से ही इसके विरुद्ध बच्चों में संस्कार और मूल्य डालने पड़ेंगे। पैसे का लालच तो अंतहीन है, पर यदि हम देश, समाज, परिवार के साथ एकसूत्र में गुंथे हुए आगे बढ़ना चाहते हैं तो हमें भ्रष्टाचार के विरुद्ध स्वयं को सिपाही बनाना पड़ेगा और इसकी अगुआई करने वाले सरकारी, गैर-सरकारी संगठनों एवं जनआंदोलनों का साथ देना पड़ेगा।

जनसत्ता

Date:31-08-19

दोहरी प्रताड़ना

संपादकीय

पंचायती राज व्यवस्था को इसलिए मजबूत बनाने पर जोर दिया गया था कि स्थानीय लोग भाई-चारे के साथ अपने मामलों का निपटारा खुद कर लिया करेंगे, अपनी समस्याओं का खुद समाधान तलाशेंगे और नौकरशाही के बेवजह दखल से मुक्त रह सकेंगे। मगर पंचायतें किस कदर पक्षपाती और अन्यायी होती गई हैं, इसके ढेर उदाहरण मौजूद हैं। पंचायतों पर काबिज लोग सरकारी धन की लूट तो करते ही हैं, जाति, धर्म, समुदाय के आधार पर नाइंसाफी भी करते हैं। इसका ताजा उदाहरण बिहार के गया जिले में एक ग्राम पंचायत का बलात्कार पीड़िता का सिर मुंड़वा कर गांव में घुमाना है। जब पीड़िता और उसके परिजन बलात्कार की शिकायत लेकर पंचायत के पास पहुंचे तो उसके सदस्यों ने उल्टा लड़की को ही दोषी ठहरा दिया कि वह गलत आरोप लगा रही है। इसके दंड स्वरूप लड़की का सिर मुंड़वा कर उसे गांव में घुमाया गया। इस मामले की सूचना मिलने पर स्थानीय थाने ने संबंधित लोगों के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज की है। विचित्र है कि जिसे पीड़ित को न्याय दिलाना चाहिए, वह खुद अन्याय करता है।

हालांकि बिहार में यह अकेली घटना नहीं है, जिसमें किसी पंचायत ने दोषियों के खिलाफ खड़े होने के बजाय पीड़िता को दंडित करना न्यायसंगत समझा। कई घटनाओं में कुछ महिलाओं को खौलते तेल में हाथ डाल कर अपनी बेगुनाही साबित करने, सामूहिक पिटाई सहने, पत्थर मारे जाने जैसी दंड सुनाए जा चुके हैं। इन तमाम घटनाओं का बारीकी से अध्ययन करें तो लगभग सभी महिलाएं समाज के कमजोर तबके से रही हैं। छिपी बात नहीं है कि देश की तमाम पंचायतों पर ऊंची कही जाने वाली जातियों के दबंग लोग काबिज हैं। जिन सीटों पर आरक्षण की वजह से समाज के कमजोर और नीची कही जाने वाली जातियों के लोग सरपंच हैं, वे भी गांव के दबंग लोगों के मुताबिक ही काम करते देखे जाते हैं। इस तरह उनमें से भी ज्यादातर का कार्यव्यवहार ताकतवर लोगों के अनुसार होता है। फिर गांवों में नीची कही जाने वाली जातियों और आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों की महिलाओं को किस कदर प्रताड़ना का शिकार होना पड़ता है, यह भी कोई छिपी बात नहीं है। जाहिर है, गया की ग्राम पंचायत ने भी इसी सामंती सोच के चलते पीड़िता को दोहरी प्रताड़ना से गुजरने को मजबूर किया।

ज्यादातर ग्राम पंचायतों में जातिवादी सोच गहरे तक जड़ जमाए हुए है। यही वजह है कि गांवों के विकास से जुड़ी योजनाओं का अधिकतर लाभ सरपंच अपनी जाति से जुड़े लोगों को पहुंचाते देखे जाते हैं। अपनी जाति के लोगों पर अगर किसी तरह का आरोप लगता है, तो सरपंच अक्सर उसे बचाने के लिए किसी भी हद तक जाते देखे जाते हैं। गया की

पंचायत में भी पीड़िता चूंकि समाज के कमजोर तबके से थी और पंचायत में दबंग लोगों का कब्जा है, उन्होंने यह सोच कर ही एकतरफा फैसला किया कि वह उनके फैसले को चुनौती नहीं दे सकती। उसका परिवार पंचायत के फैसले को चुपचाप मान और चुप्पी साध लेगा। यह भी छिपी बात नहीं है कि गांवों के दबंग लोग किस तरह गरीब और कमजोर तबके की महिलाओं के साथ बदसलूकी करते हैं। ऐसे में जिन लोगों पर लड़की ने बलात्कार का आरोप लगाया, वे ताकतवर लोग रहे होंगे, छिपी बात नहीं है। जाहिर है, पंचायत ने उन्हें बचाने का प्रयास किया। पंचायतों के ऐसे रवैए के चलते ही पंचायती राज व्यवस्था की साख गिरी है।

Date:31-08-19

फ़सले और उम्मीदें

संपादकीय

भारत में विदेशी पूंजी लाने के मकसद से सरकार ने एफडीआइ नियमों को और उदार बनाने की दिशा में जो कदम बढ़ाया है वह निश्चित रूप से अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाने में मददगार होगा। बुधवार को कैबिनेट की बैठक में जो बड़े फैसले किए गए उनसे साफ है कि देश को मंदी के माहौल से उबारने के लिए इस तरह के आर्थिक उपाय करने जरूरी हो गए हैं। पिछले एक हफ्ते में यह तीसरा मौका है जब अर्थव्यवस्था को सुधारने की लिए तीसरा बड़ा फैसला किया गया है। भारत में इस वक्त निवेश, मांग और खपत तीनों सुस्त हैं और अर्थव्यवस्था के ये तीनों ही कारक मंदी का कारण बने हुए हैं। ऐसे में विदेशी निवेश लाने के लिए एफडीआइ नियमों में ढील देना वक्त की जरूरत बन गई है। सबसे बड़ा फैसला तो यह हुआ है कि एकल ब्रांड खुदरा क्षेत्र के लिए नियमों को आसान बनाया गया है। इस क्षेत्र में तीस फीसद घरेलू खरीद के नियम के दायरे को व्यापक बनाया गया है। इससे एकल ब्रांड कंपनियां अब ऑनलाइन और ऑफलाइन स्टोर साथ-साथ खोल सकेंगी। अब पहले ऑफलाइन स्टोर खोलने की अनिवार्यता खत्म हो जाने से भारत में विदेशी कंपनियों के आने का रास्ता आसान हो जाएगा और उम्मीद की जानी चाहिए कि कई बड़ी कंपनियां भारतीय बाजार में दस्तक देंगी।

आज दुनिया में खुली अर्थव्यवस्था है। ऐसे में कारोबारी नियम भी उदार ही होने चाहिए, बशर्ते राष्ट्र के हितों पर प्रतिकूल असर न पड़ता हो। सरकार ने कोयला क्षेत्र के विकास को रफ्तार देने के लिए कोयला खनन और ठेका विनिर्माण में सौ फीसद विदेशी निवेश का रास्ता साफ कर दिया है। हालांकि कोयला क्षेत्र को लेकर अभी संदेह इसलिए बना हुआ है कि विदेशी कंपनियां इसमें पैसा लगाने से बच सकती हैं। इस वक्त दुनिया की बड़ी कंपनियों की दिलचस्पी हरित ऊर्जा वाली परियोजनाओं को लेकर ज्यादा है। लेकिन ठेका विनिर्माण क्षेत्र में सौ फीसद एफडीआइ अर्थव्यवस्था को गति देने में बड़ी भूमिका निभा सकता है। माना जा रहा है कि इससे विदेशी कंपनियां भारत में अब दूसरी कंपनियों को ठेके देकर अपने उत्पाद भी बनवाएंगी। यही कंपनियां फिर भारत से निर्यात करेंगी तो इससे भारत को दोहरा फायदा होगा। इससे देश में विनिर्माण क्षेत्र में रोजगार के अवसर पैदा होंगे। एक मोटा अनुमान यह लगाया गया है कि ठेका विनिर्माण क्षेत्र में सौ फीसद एफडीआइ के फैसले से 2022 तक देश की जीडीपी में विनिर्माण क्षेत्र का योगदान बढ़ कर पच्चीस फीसद तक हो सकता है जो अभी सोलह-सत्रह फीसद है। इसके अलावा कैबिनेट ने देश भर में पचहत्तर नए मेडिकल कालेज खोलने का जो बड़ा फैसला किया है, वह नि

श्चित रूप से वक्त की जरूरत है। आज देश में ज्यादातर जिले खासतौर से ग्रामीण इलाके बुनियादी स्वास्थ्य सुविधाओं से वंचित हैं। इसकी वजह यह रही है कि आजादी के बाद स्वास्थ्य क्षेत्र का बुनियादी ढांचा विकसित नहीं हो पाया है। देश में डॉक्टरों और अन्य चिकित्सा कर्मचारियों की भारी कमी है। ऐसे में अगर बड़ी संख्या में मेडिकल कालेज खुलते हैं तो निश्चित रूप से अस्पतालों में डॉक्टरों की कमी दूर होगी और जिला स्तर पर स्वास्थ्य सुविधाओं का दायरा बढ़ाया जा सकेगा। सबसे ज्यादा फायदा ग्रामीण आबादी को होगा। भारत में चिकित्सा क्षेत्र को नया रूप देने के मकसद से सरकार का यह फैसला मील का पत्थर साबित हो सकता है। सबसे बड़ी जरूरत तो इस बात की है कि इन योजनाओं पर काम पुख्ता तरीके से हो।

Live हिन्दुस्तान.com

Date:30-08-19

जरूरत स्थाई हल निकालने की है

कश्मीर में 50 हज़ार युवकों को नौकरी देने का वादा अच्छा संकेत हो सकता है, लेकिन वहां बेरोज़गारी की समस्या का स्थाई समाधान ज़यादा ज़रूरी है।

जवाहरलाल कौल

जम्मू-कश्मीर के राज्यपाल सत्यपाल मलिक ने यह कहकर लोगों को चौंका दिया कि वह अगले तीन महीने के भीतर 50 हजार लोगों को रोजगार उपलब्ध कराएंगे। चौंकने का कारण यह है कि कुछ ही दिनों पहले तक यह माना जा रहा था कि राज्य में बेरोजगारों की बहुत बड़ी संख्या है और सरकार के पास उसके छोटे भाग को भरने के लिए भी खाली स्थान नहीं हैं। समस्या गंभीर इसलिए है कि इस राज्य में बडे उद्योग हैं ही नहीं, जो रोजगार का प्रमुख साधन बन सकते थे। अब अचानक राज्यपाल को इतनी बड़ी संख्या में रिक्त स्थान मिल गए हैं। स्पष्ट है, विभिन्न विभागों में बरसों से जगहें खाली पड़ी रही होंगी और किसी का ध्यान उनकी ओर नहीं गया होगा, क्योंकि जब प्रशासन में काम पर लगे कर्मचारी ही पूरा काम नहीं करते थे, तो खाली स्थानों की चिंता कौन करता? किसी कार्यालय में खाली पदों के बारे में चिंता तब होती है, जब काम इतना हो कि काम करने वालों की इसकी जरूरत महसूस हो। जब आतंकवाद के दौर के बाद चुनी हुई सरकारें आईं, तब भी राज्य-प्रशासन को सुधारने का कोई गंभीर प्रयास नहीं किया गया। जो नेता आज अनुच्छेद 370 को हटाने पर अचंभित हैं और लोकतंत्र के खतरे में होने के नारे लगा रहे हैं, वही बारी-बारी से सत्ता पर अधिकार जमाते रहे हैं। इनमें सबसे पहले तो फारुख अब्दुल्ला ही हैं। फारुख हों या उनके बेटे उमर, मुफ्ती मोहम्मद सईद हों या उनकी बेटी महबूबा या फिर गुलाम नबी आजाद हों, कश्मीर का सच यही है कि किसी ने अपने प्रशासन को दुरुस्त करने की तरफ ध्यान नहीं दिया। आधे अमले से जैसे-तैसे समय गुजारते रहे, तो बेरोजगारों की फिक्र कौन करता?

राज्यपाल मलिक की घोषणा एक तरह से सुखद समाचार है, लेकिन इसके बारे में कुछ ठहरकर समझना होगा कि ये 50 हजार नौकरियां किन-किन पदों की हैं। ये अगर दूसरे और पहले दर्जे के अधिकारियों, इंजीनियरों, डॉक्टरों, अकाउंटेंटों या इंस्पेक्टरों की भी हों, तो सचमुच आश्चर्य होगा। इन पदों पर भर्ती करवाने वाले कश्मीर के पुराने तौर-तरीकों में लाखों में

खेलते, इनको खाली रखना तो निहायत बेवकूफी होती। इन खाली पदों में से ज्यादातर पद चौथे और उससे अधिक पांचवें दर्जे के पदों के होंगे। यह तो स्वाभाविक होगा। एक मायने में यह ठीक भी है। आखिर कई हजार गरीब लोगों का काम भी बन जाएगा। तीसरे और चौथे दर्जे के कर्मचारी दबे-कुचले वर्ग के ही होते हैं। वही लोग, जिनको दीन-धरम के नाम पर आसानी से मरने-मारने पर लामबंद किया जा सकता है। ये उन्हीं घरों के लड़के होंगे, जिनकी रोजी-रोटी के साथ अतिवादियों को खिलवाड़ करने का शौक रहा है। हरेक हड़ताल या कर्फ्यू में जिनकी दुकान बंद हो जाती है, जिनकी दैनिक दिहाड़ी मारी जाती है, जिनके तांगे या टैक्सी घर पर ही रहते हैं और संकट के दिनों के लिए रखी बचत अचानक समाप्त हो जाती है। वे तो राज्यपाल की घोषणा के बाद दिन गिनने लग गए होंगे कि कब मेरे बच्चों की बारी आएगी।

हम मानते हैं कि यह वादा पूरा होगा और हजारों नौजवानों को एक रास्ता मिल जाएगा अपने जीवन को सही दिशा देने का। यह तय है कि इससे जम्मू-कश्मीर में बेरोजगारी की समस्या हल नहीं होगी, क्योंकि यह समस्या पिछले सात दशकों में विराट रूप धारण कर चुकी है और इसके लिए हमें एक स्थाई हल निकालने की आवश्यकता होगी। वह हल बहुआयामी ही हो सकता है। ठहरे हुए उद्योगों को चलाना होगा। जहां नहीं हैं, वहां नए खोलने होंगे। ऐसी परियोजनाओं को आरंभ करना होगा, जिनका लाभ विकास का ढांचा बनाने में तो हो ही, उनसे रोजगार के स्थाई अवसर भी विकसित हों। पढ़े-लिखे नौजवानों के लिए उपयुक्त संस्थानों का निर्माण करना होगा, जहां उनके योग्य काम तो हो ही, नए रोजगार पैदा होने का एक माहौल भी बन सके। दरअसल, जम्मू-कश्मीर को अब नए दौर की तैयारी करनी होगी। इस विकास का केंद्र केवल नगर नहीं, अपितु देहात को भी बनाना होगा, क्योंकि अब तक जो अन्याय हुआ है, उसकी सबसे अधिक मार जम्मू-कश्मीर के देहात पर ही पड़ी है। पंचायतों को शक्ति देनी होगी, यही पंचायतें जनता तक विकास की योजनाओं को पहुंचाएंगी।

पंचायतों के माध्यम से सरकार और आम जनता के बीच संवाद भी पैदा होगा, जो सही लोकतंत्र के विकास के लिए सबसे कारगर साधन है। पंचायतों के चुनाव हो चुके हैं, लेकिन अभी तक इन संस्थाओं को न तो वे अधिकार प्राप्त हुए हैं और न ही वह वातावरण, जिसमें वे अपनी उपयोगिता सिद्ध कर सकें। फिर भी, राज्यपाल की घोषणा से राज्य में एक माहौल पैदा होगा कि नई संभावनाएं सामने हैं। अंधेरे में रोशनी की किरण दिखाई देने लगेगी। केंद्र सरकार ने आश्वासन दिया है कि नई व्यवस्था में प्रगति के नवीन मार्ग खुलेंगे। इसलिए राज्य सरकार की इस पहल का स्वागत करना चाहिए।

The Indian EXPRESS
JOURNALISM OF COURAGE

Date:30-08-19

Fewer human sightings

For tigers to regain some dominion over the jungles, it is essential their habitat remain as wild as possible

Stephen Alter

What do we mean by the word “wild”? How do we define and preserve wild places? How many tigers and other creatures actually still “live in the wild”? Though there is no clear, precise answer to any of these questions, our future depends upon ensuring that a significant portion of our planet remains wild.

Earlier this year, my wife and I visited the Pench and Tadoba Tiger Reserves, on either side of the state border dividing Madhya Pradesh and Maharashtra. Late in the afternoon, driving along a forest track, we were fortunate to see a large tigress, visibly pregnant. She was lying in the shade, camouflaged amidst the foliage, about 100 metres from an artificial waterhole. A few minutes after our jeep pulled up and our guide pointed out the tigress, approximately 20 other vehicles congregated at the same spot.

We watched the predator for half an hour before she eventually got on her feet and slowly made her way directly in front of us to a concrete-lined tank of water, filled by a solar-powered pump. Lowering her hindquarters into the pool, until half her body was submerged, the tigress emitted a soft moaning sound, as if she was in distress. Perhaps the cubs inside her womb were getting restless or the jeeps had disturbed her; possibly the high temperature that day added to her unease. But the cool water seemed to soothe the tigress’s discomfort.

Though this “tiger sighting” was one of the highlights of our visit to the parks and allowed me to get a good photograph, the conditions under which we observed the tigress made me wonder about the underlying purpose of tiger reserves. Our noisy convoy of “jeep safaris”, engines revving, as they took up a position near the waterhole and the impatient crowd of visitors, including an obnoxious woman who shouted abuses at the other drivers for blocking her view, could just as easily have been a traffic jam in the nearby city of Nagpur.

On July 29, 2019 — the “International Tiger Day” — the Prime Minister of India released encouraging figures from the country’s most recent tiger census. Officially, India now has 2,967 tigers in the wild, their numbers doubling from an all time low of 1,411 in 2006, when poachers and the illicit demands of Chinese medicine seemed close to wiping them out. A wildlife census is a notoriously difficult project. But, with camera trap technology and trained scientists from the Wildlife Institute of India conducting the recent survey, it seems that the current numbers are relatively accurate, though there is always a margin of error.

Nevertheless, a healthy debate over this census has already begun and one of the world’s foremost experts on tigers, K Ullas Karanth, Director of the Centre for Wildlife Studies in Bengaluru has written, “When tiger recovery efforts began 50 years ago we had about 2,000 tigers. If after all this effort and expenditures we are satisfied with just 3,000 tigers, it points at a serious management problem.” Karanth’s research leads him to believe that India’s forests have the “carrying capacity” of 10,000-15,000 tigers, which means we still have a long way to go.

In order to allow tigers to regain some dominion over the jungles of India, it is essential that their habitat remain as wild as possible. Paradoxically, we might argue that the true definition of a wild environment is one that does not require the protection of human beings, where nature preserves and sustains itself. Of course, with population pressures and the chanted mantras of development, that isn’t feasible. But, in essence, human beings need to be excluded from the limited percentage of forested land that has been designated for wildlife preservation. Most of India’s conservationists have long recognised that forest-dependent communities must be part of the solution. However, while that goal may be achieved through designated areas of “mixed-use forest”, humane and generous relocation packages, as well as dialogue, education and ecologically-sensitive job opportunities, it still comes down to providing wildlife with enough space and biodiversity to survive.

Some years ago, Madhusudan Katti, a professor of vertebrate ecology, wrote an insightful and provocative essay entitled, "Are leaf warblers more important than tigers?" The essential point he makes is that wild forests are complex, interdependent ecosystems in which a tiger's survival depends as much on tiny birds eating swarms of insects that devour the foliage and denude the jungle, as on the preservation of prey species or the deterrence of poaching. Wild places need much more than just the simple mathematics of a wildlife census.

As we watched the pregnant tigress rise from the waterhole and vanish silently into the jungle, I couldn't honestly say that I had observed a tiger "in the wild". The intrusive presence of our jeep safari seemed to negate that phrase. Perhaps, like graziers or woodcutters who are relocated outside the perimeters of tiger reserves, we too need to be excluded so that the litter of cubs the tigress bore might grow up with fewer "human sightings."

Date:30-08-19

A more precarious citizenship

India is unlikely to deport to Bangladesh people who fail NRC test. But the millions who will become non-citizens will have fewer rights

Sanjib Baruah

The phrase "India's internal matter" has featured prominently in the country's diplomacy in recent days. It cropped up repeatedly in the government's responses to the international fallout of the moves on Jammu and Kashmir: To scrap Article 370 and downgrade the state to a Union Territory. The country's diplomats have pointed to the Simla Agreement of 1972 and the Lahore resolution of 1999 to assert India's jurisdictional competence to take those actions.

"Every new agreement overtakes the past," says India's ambassador to the UN regarding the international commitments made in an earlier era. But whether the Centre's unilateral action— and the communication blockade and security crackdown imposed on the people most affected by it — is consistent with the commitment to resolution of differences through peaceful and bilateral means is quite another matter.

Last week, the "internal matter" formulation also surfaced in a somewhat novel context. In statements made in Dhaka, External Affairs Minister S Jaishankar described the process of the identification of citizens and non-citizens in Assam as India's internal matter.

The use of the phrase in the case of Kashmir is quite familiar: To make a jurisdictional assertion of India's power to act on matters affecting that area. The claim is that Kashmir comes under India's "domestic jurisdiction" in the sense of Article 2(7) of the UN Charter, which excludes UN intervention in matters that are "essentially within the domestic jurisdiction of any state". But there are no jurisdictional challenges to the process of citizenship documentation in Assam. The citizenship practices of states and the power to define the rules of entry into a country are widely seen as matters of sovereign discretion.

Jaishankar's statement in Dhaka was clearly intended for a different purpose: To ease Bangladesh's fears. It was a promise that the fallout of the citizenship documentation process in Assam will be contained; it will not extend to Bangladesh. Home Minister Amit Shah had previously raised India's concerns about unauthorised immigration with his Bangladeshi counterpart. The news of the NRC — and that millions of suspected Bangladeshi unauthorised immigrants may be excluded — has received wide media coverage causing significant consternation and confusion in Bangladesh.

Not surprisingly, the media there made a point of putting Jaishankar's comments in that context. According to the Daily Star, when the minister was "asked about concerns that some four million Bangla-speaking people are at the risk of losing Indian citizenship as they were left out of the National Register of Citizens in Assam," he said, "This is an internal matter of India". Bangladesh Foreign Minister Abul Kalam Abdul Momen was quoted as telling reporters that when he pointed out that his country was "already in serious trouble with 1.1 million Rohingyas," Jaishankar replied, referring specifically to the NRC, "you don't worry at all about it".

Of course, Article 370 featured prominently on Jaishankar's agenda in Bangladesh. His comment that the Kashmir decisions were India's internal affair was the focus of newspaper headlines in Bangladesh. The country's Ministry of Foreign Affairs expressed his country's support for that position: "Bangladesh maintains that the abrogation of Article 370 by the Indian government is an internal issue of India."

But what does it mean to suggest that the NRC and related efforts to harden the Indo-Bangladesh border and to curb unauthorised immigration will not impact Bangladesh? At least the Indian Supreme Court order that re-energised the NRC process does not support such a reading. The NRC was only one element of that 2014 ruling. The Court, acting on the far-reaching powers given to it by Article 142 of the Constitution, gave a number of directions including one on the "mechanism of deportation of declared illegal migrants". By no stretch of imagination can this instruction be construed as a matter of domestic policy.

"While taking note of the existing mechanism/procedure for deportation keeping in view the requirements of international protocol," said the order, "we direct the Union of India to enter into necessary discussions with the Government of Bangladesh to streamline the procedure of deportation". The issue, however, has taken a backseat during the Court's monitoring of the implementation of its directions. The updating of the NRC—India's largest ever judiciary-led bureaucratic operation — has taken most of its energy and attention.

India's efforts to tighten border enforcement and curb irregular migration parallel similar moves by a few other countries. The impact of these actions on regional neighbours has rarely been benign. In the most extreme case, the Donald Trump Administration's clampdown on unauthorised immigrants has had profound effects on countries south of the US border. The single most important factor negatively impacting Central American countries like Honduras and El Salvador has been the return of deportees.

Understandably, one message that Jaishankar tried to convey to Dhaka was that no matter what, Indian policies will not include deportation— at least not to any noteworthy extent. This won't come as a surprise to many. That India does not have large-scale deportations in mind has been quite evident for a while.

India's diplomatic priorities vis-à-vis Bangladesh are simply much too high to risk alienating that country by deporting its nationals. The Modi government has clearly made a decision that the question of unauthorised immigrants is best left as India's internal matter. Many would welcome the fact that deportation is now off the agenda. But the full implications of this shift will not be apparent for a while.

Viewed in comparative terms, regularisation or legalisation is one obvious alternative. Irregular migration is to a significant extent a component of labour migration. Faced with a choice between ignoring tax evasion in the underground economy that frequently employs irregular migrants, or exercising control over it, governments have sometimes found regularising the status of unauthorised migrants to be an attractive policy option. Amnesty is its synonym. But lately it has become a controversial word, at least in the US.

There are no signs that a general amnesty will be among the options that India will consider. But defining hundreds and thousands of people living in the country as non-citizens will create a new form of precarious citizenship — people with fewer rights and entitlements. This is an uncharted and potentially dangerous territory for a democracy. The growing talk of detention camps and the rapid normalisation of the idea does not bode well. However, given the ruling party's ideological predilections, it is clear that the aborted citizenship amendment bill will be reintroduced in the near future, and it is likely to get Parliament's approval quite easily. What will then effectively become a faith-based selective amnesty will radically change the meaning of being excluded from the NRC.

Given this outlook, those who once supported the Assam Movement will be hard-pressed to claim that the completion of the NRC will mark the successful achievement of their goals. Whatever one thinks of the movement's famous demands for the "three Ds, detection, deletion and deportation," the future of Assam will be very different from what supporters of the movement had imagined.

Popular protest movements — like revolutions — it seems, can also end by devouring their own children.

THE HINDU

Date:30-08-19

Tinkering for optics

The latest FDI rule changes may not be enough to draw a rush of investments

Editorial

On the face of it, the Centre's announcement on Foreign Direct Investment (FDI) norms on Wednesday appears to be one more push to make India a more attractive destination to overseas investors, especially those keen on entering the market for the long haul. From extending the available 100% FDI under the automatic route in the coal mining sector (till now permitted only for captive consumption) to include those companies seeking to commercially sell the commodity, to distinctly including contract manufacturing under the automatic 100% route and easing local sourcing norms for overseas investors in the Single Brand Retail Trading (SBRT) business, the changes in investment guidelines approved by the

Cabinet have been touted as “FDI policy reform”. The government, clearly concerned by the economic slowdown and persistently weak investment activity, has sought to provide a policy fillip to attract more foreign capital into sectors that it sees as having a multiplier effect particularly in terms of job creation. One must also consider the pressing contexts. Earlier this month, the RBI pointed out that net FDI flows had moderated to $6.8 billion over the first two months of the current fiscal year, from $7.9 billion in April-May 2018. And with Prime Minister Narendra Modi having set a goal of ensuring India becomes a $5 trillion economy within the next five years, the overall consumptive capacity needs to be raised manifold to undergird demand growth. To that end, the act of widening reforms in coal mining, manufacturing and retail is completely understandable.

A closer examination, however, raises several concerns about the ultimate attractiveness of these changes. For instance, the tweaks to investment norms on coal appear at first flush to be a win-win for both the economy at large and the coal industry, the environmental costs of focusing on one of the most polluting fossil fuels notwithstanding. This is predicated on the prospect of seeing an influx of both capital and modern technology into mining and processing, as well as raising domestic supply of the key raw material for power, steel and cement production thereby cutting costly and burgeoning imports. But for foreign mining companies to make a beeline to pitheads, several related regulatory and market challenges will have to be addressed post-haste. Large miners will need economies of scale and so require access to large contiguous fields with minimal bureaucratic constraints on operations. While domestic thermal power plants have had to rely on increased imports in recent times, many of the electricity producers themselves are in financial stress. How much additional investments may actually accrue is not clear.

Date:30-08-19

On dilution, bifurcation and ‘special status’

J&K’s perceived loss and New Delhi’s real gains over the Centre’s Article 370 decision need to be objectively assessed

Faizan Mustafa

The jubilation in parts of the country following the supposed abrogation of Article 370 was in contrast to the gloom in the Kashmir Valley. It was ignored by both sides that New Delhi did not make any substantial gain in terms of powers; neither did Srinagar suffer any major loss. Later, in what could be construed as a setback to the Centre, the Supreme Court referred all the petitions on Article 370 to a Constitution Bench, which will hear the matter in the first week of October.

Amidst these developments, some points require deeper scrutiny. First, the apex court could possibly strike down as ‘unconstitutional’ the Centre’s move to amend Article 370 by invoking the very same article. Second, the bifurcation of a State which is under President’s rule into two Union Territories is possibly against federalism. And third, Article 370, as it stood on August 4, was a special power available not to Kashmir, but to the Centre.

First, Article 370 has not been abrogated. It still very much remains part of the Constitution. Instead, the government, in an innovative and constitutionally suspect manner, invoked the Article to amend Article 367. On August 5, the President inserted a new clause to say that the 'Constituent Assembly' of Jammu and Kashmir (J&K) shall mean 'Legislative Assembly' of the State, and 'State government' shall mean 'Governor acting on the advice of Council of Ministers'. With this interpretation, Article 370 presented an entirely different picture. Since the erstwhile State was already under President's rule, the Parliament, by exercising 'powers' of the Legislative Assembly, gave its concurrence to the aggressive surgery of Article 370 that has killed the spirit as well as the text of the provision.

Bona-fide exercise of power?

True, during President's rule, Parliament can certainly exercise 'powers' of the State Assembly; but whether the aforesaid 'concurrence' can be termed as a legitimate and bona-fide exercise of power is a moot question for various reasons.

One, a Legislative Assembly that was in itself a creation of the Constituent Assembly cannot take the place of the latter. Two, the August 5 order defined the 'State government' to mean 'Governor acting on the advice of Council of Ministers'. And since there was no Council of Ministers, the validity of the Governor's concurrence mentioned in the presidential order was questionable.

Finally, Article 370(1)(d), which on August 5 was used for the purpose of diluting the Article itself, was meant to be deployed to apply 'other provisions of Constitution' to Jammu and Kashmir, not to modify or repeal Article 370 itself. The expression 'other provisions' here means provisions other than 'Article 1', 'Article 238' (now repealed) and 'Article 370'.

Four points are to be kept in mind here. First, one constitutional provision cannot be used to nullify another. Second, an interpretation clause is to be used only when there is ambiguity in the Constitution. Here, the 'Constituent Assembly' Article 370 talked about was clearly identifiable — it first met on October 31, 1951 and was dissolved on January 26, 1957, and hence there was no ambiguity. Third, even when there are two contradictory provisions, the 'doctrine of harmonious construction' is to be invoked so that both the provisions are given effect to. Fourth, like Parliament, President too cannot alter the federal character of the Constitution, which has been held to be part of its basic structure. The Constitution prohibits colourable exercise of power — what you cannot do directly, you cannot do even indirectly.

Blow to federalism

Next, the constitutional validity of Jammu and Kashmir's bifurcation into two Union Territories is also doubtful. Article 3, which deals with Parliament's powers to alter boundaries of a State or bifurcate it, required the President to obtain the 'concurrence' of the J&K State Assembly before Parliament took up such a Bill. It has now come to light that while imposing President's rule in J&K on December 19, 2018, the proviso on the reference to Assembly was suspended. This not only shows that the bifurcation was planned by the Centre in 2018 itself but also gives a clear indication of its mala-fide intention of doing something indirectly.

A mala-fide presidential action under Article 356 can be struck down. If the apex court upholds the Centre's suspension of Article 3, it will be an end of Indian federalism as States will become a plaything in the Centre's hands. It needs to be recalled here that prior to the Reorganisation Act of 1956, States were given the opportunity to express their views. Andhra Pradesh Assembly too was given this opportunity in

2014 prior to the creation of Telangana. Since the J&K Assembly stood dissolved and there had been no election announced, it was denied its right to express its view.

When a State is under President's rule, Parliament can act as nothing more than a 'night watchman'. It certainly cannot pass a resolution to bifurcate the State.

No major departure

Let us now objectively assess New Delhi's gains in sounding the death knell for Article 370. Since almost the entire Constitution of India had been already applicable to J&K, constitutionally speaking, heavens have not fallen for Srinagar. Entry 76 of Union List, which deals with audit, was extended to J&K in 1958 . The Election Commission of India was similarly given powers to conduct elections from 1959 by the First Amendment to the J&K Constitution. A total of 94 out of the 97 items in the Union List had already been made applicable to J&K when the Centre made its move and hence Parliament had all the powers.

Out of the 395 Articles in the Indian Constitution, 260 Articles had already been extended to J&K through successive Presidential Orders. As regards the rest of the Articles, J&K Constitution had identical provisions. Moreover, more than 250 Central laws had already been extended and most of J&K's State laws were identical to Central laws.

In reality, the 'special status' Article 370 conferred was not to J&K but to the Central government. The Centre could deny certain provisions while extending unilaterally some other amendments. For instance, following the 44th Amendment, unlike in the rest of the country, national emergency in J&K could still be imposed on the grounds of 'internal emergency'. Similarly, while for the rest of the country, freedom of speech could be curtailed only through 'reasonable restrictions', in J&K, it could be controlled through restrictions that "appropriate legislature considered reasonable".

Yes, we do live in a post-truth world but we need to objectively assess J&K's loss and New Delhi's real gains when it comes to the dilution of Article 370. Further, whether the apex court will allow India to become a 'unitary state' remains to be seen.